आबादी की आदिम बसावट

शुरुआती बस्तियों की संरचना पर गौर करें, तो देख सकते हैं कि पत्थर के संदर्भ में कच्ची सामग्री की बहुतायत है, जिसका इस्तेमाल प्रागैतिहासिक काल के लोग औजार बनाने में करते थे। इससे उन्हें एक जगह बसने में बड़ी सुविधा हुई। यह देश के कई अन्य भागों में बस्तीकरण को लेकर निर्णायक कारक साबित हुआ

■ डॉ. आर.पी.मित्रा
मानव विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

निश्चित रूप से यह कह पाना मुश्किल है कि भारतीय उपमहाद्वीप में बस्ती की शुरुआत कब, कहां और कैसे हुई? उष्णकटिबंधीय मौसम की स्थिति होने के कारण जीवाश्म प्राप्ति जैसे कार्बनिक पदार्थों वाले सुबूतों के बजाय हमारे पास पत्थर के औजार के रूप में प्रमाण मौजूद हैं। इन संस्कृतियों के वाहक भारतीयों के प्रागैतिहासिक विवरण में अपनी गैरमौजूदगी के कारण विशिष्ट हैं। इसलिए हमें उनके बारे में इन समूहों के किसी सामाजिक, भौतिक या कलात्मक विशेषताओं के मुकाबले इस समूह की प्रौद्योगिक विशेषताओं के संदर्भ में ज्यादा बातें करनी होंगी। पुरातत्ववेत्ताओं द्वारा किए गए अध्ययन संकेत करते हैं कि भारतीय उपमहाद्वीप में बस्ती के आरंभिक प्रमाण लगभग 15 से 17 लाख साल पहले (माया) के मिलते हैं, जब जलवायु की स्थिति ऊष्ण से आद्र हो रही थी, और यह बस्तीकरण के लिए स्थिर एवं बेहतर बदलाव वाला मौसम था। भारत और पाकिस्तान में ऊपरी शिवालिक इलाके में औजार बनाने वाले तथा होमो इरेक्टस कहलाने वाले मानव के एक समूह ने बसना शुरू किया। प्रागैतिहासिक काल में, विकासवाद तथा सहकारी समन्वयवाद से ज्यादा लोगों के प्रत्यक्ष प्रवसन के माध्यम से बदलाव के प्रति झुकाव देखा गया है।

अगर हम शुरुआती बस्तियों की संरचना पर गौर करें, तो स्पष्ट रूप से देख सकते हैं कि पत्थर के संदर्भ में कच्ची सामग्री की बहुतायत है, जिसका इस्तेमाल प्रागैतिहासिक काल के लोग औजार बनाने में करते थे। इससे उन्हें एक जगह बसने में बड़ी सुविधा हुई। परिणामस्वरूप यह देश के कई अन्य भागों में बस्तीकरण को लेकर बहुत ही निर्णायक कारक साबित हुआ। इस प्रकार, हम पाते हैं कि उस समय तक गंगा के मैदान, पश्चिमी घाट के ज्यादातर हिस्सों तथा उत्तर-पूर्व के भागों को छोड़कर हमारे पुरापाषाणकालीन पूर्वज देश के सभी हिस्सों में अपनी बस्ती बना चुके थे। पत्थर के मिले औजार संकेत करते हैं कि प्रौद्योगिकी एवं बस्तियों के नवाचार के ख्याल से मध्य भारत में राजस्थान और मध्य प्रदेश तथा पूर्वी घाटों के दक्षिण हिस्से का उभार सबसे महत्त्वपूर्ण रूप हुआ। पुरातत्वविद् ने दो व्यापक विभाजनों को देखने की कोशिश की है, एक अफ्रीका तथा यूरोप अश्युलियन उद्योग के साथ एक समष्टि बनाने वाले गंगा घाटी के उत्तरी तटों तक प्रायद्वीपीय भारत का गठन करता है, तो दूसरा पश्चिमी हिस्से को आच्छादित करने वाले सोहेनियन उद्योगों की छोटे-छोटे पत्थर आधारित तांबे को काटने वाली समष्टि बनाता है, जिसके पास पूर्वी एवं दक्षिण एशिया के समान बस्ती है। भारत इन दोनों सांस्कृतिक विभाजन का एक सम्मिलन बिन्दु बनाता है।

बारहमासी सोतों को दी प्राथमिकता

हमारे आरंभिक पूर्वज अपने घरों को बनाने के लिए झील या पहाड़ी ढलानों या गुफाओं जैसे पानी के बारहमासी सोतों के पास स्थलों को प्राथमिकता देते हुए प्रतीत होते हैं। उन्होंने पत्थर के औजारों के इस्तेमाल में रूपांतरण को लेकर उत्साह दिखाया। बीतते समय के साथ उन्होंने अपने उपकरण भंडार में बेहतर और नई तरह के औजारों को भी शामिल किया। प्रतिनूतन युग के अंत तक हमारे पूर्वजों ने जाल और फंदों का उपयोग करना शुरू कर दिया था। बड़ी संख्या में पाए जाने वाले कबाड़ी इस बात का संकेत हैं कि लकड़ी तथा लकड़ी आधारित औजारों का इस्तेमाल वो अपने विभिन्न उद्देश्यों के लिए करने लगे थे। 30,000 से 40,000 ई.पू. तक हम अपने पूर्वजों द्वारा पेंटिंग्स तथा धर्म की शुरुआत को देखते हैं।

इसी समय के आसपास आधुनिक मानव या होम सेपियन्स धीरे-धीरे आद्य मनुष्य की जगह लेने लग गए थे। उन्होंने बसना भी शुरू कर दिया था। इसी समय के ईर्द-गिर्द जलवायु में परिवर्तन आया। भारी वर्षा के कारण पर्यावरण की स्थितियों में भी बदलाव हुआ। प्रतिनूतन युग के अंत तक मछली पकड़ने तथा चिड़ियों के शिकार जैसी गतिविधियां आजीविका के नये साधन के रूप में उभरीं। हमारे पूर्वजों ने अपने उपकरण भंडार में पत्थर के सुगढ़ और छोटे-छोटे औजारों को भी शामिल कर लिया। यह वह समय था, जब उन्होंने गंगा घाटी तक अपना विस्तार किया। धीरे-धीरे मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश के वाराणसी एवं इलाहाबाद जैसे स्थानों में जनसंख्या का भारी जमाव शुरू हुआ। भोजन की पर्याप्त आपूर्ति ने भी उन्हें आरामदायक जिंदगी जीने में सक्षम बनाया। लगभग इसी समय राजस्थान,मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश में शव दफनाने की प्रथा की शुरुआत हुई। पहले कर्मकांड के रूप में मृत्यु अनुष्ठान उभर कर सामने आया। हमें राजस्थान के बागोर में पहले पवित्र-स्थान का सुबूत मिलता है। मध्य प्रदेश के भीमबेटका के आसपास हमें पेंटिंग की आहट मिलती है। संभवतः इसी समय हमारे पूर्वज अध्यात्म एवं सौंदर्य की तरफ उन्मुख होने शुरू हुए।

खेतीबाड़ी के शुरू होने के साथ बसावट की परंपरा ने देश के विभिन्न हिस्सों में जड़ें जमानी शुरू कर दीं। इसलिए आज हम भारत की जिस विविधता को देखते हैं, सही मायने में वह उसी समय की देन है। वी.एन. मिश्र ने उन्हें कश्मीर घाटी, उत्तरी विंध्य तथा मध्य गंगा घाटी, पूर्वी भारत, उत्तरी-पूर्वी भारत तथा दक्षिणी भारत (महापाषाम सांस्कृतिक परिसर) में विभाजित किया है। हम अपनी विशिष्ट मृद्भांड शैली तथा प्रौद्योगिक विशेषताओं वाली राजस्थान के मेवाड़ क्षेत्र में आहर संस्कृति जैसी विशिष्ट परंपराओं को उभरते हुए पाते हैं। कृषि का प्रारंभ तथा अनुवर्ती रूपांतरण सभी लोगों के लिए सभी स्थानों पर एक समान नहीं था। अब भी ऐसे केंद्रों की कमी नहीं थी, जहां आरंभिक उपकरणों तथा प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल जारी था। उनके पास अब भी निश्चिंतता वाला समय नहीं था। इसके साथ ही साथ भारतीय सभ्यता का ग्रामीण, जनजातीय तथा नगरीय विस्तार अपनी जगह बना रहा था, और 25,00 ई.पू. तक गुजरात एवं राजस्थान में सिंधु नदी के किनारे पहली शहरी सभ्यता अस्तित्व में आ गई थी।

सभ्यता की यात्रा

यह सभ्यता बाद में उत्तरी भारत के हरियाणा राज्य तक उत्तरी दिशा में आगे बढ़ी। बहुत सारे लोगों ने इस पहली सभ्यता के उदय पर बाहरी खासकर मेसोपोटामिया के प्रभाव को माना है, लेकिन अगर हम पुरातात्विक रिकॉर्ड पर नजर डालें तो मिले हुए साक्ष्यों से संकेत मिलता है कि शहरी आधारित इस विशाल सभ्यता का उभार बहुत धीमा हुआ। गांव आधारित कृषक समूहों तथा जंगल आधारित घुमंतू शिकारी समूहों एवं पहाड़ी ढलानों पर जीने वालों के बीच का अंतर नवपाषाण काल में आया। तांबे का इस्तेमाल करने वालों ने स्वयं को एक अलग समूह में विभाजित किया। उन्हें ताम्रपाषाणिक कहा गया। अन्यों को शुद्ध रूप से नवपाषाणकालीन रूप से चिह्नित किया गया। यह राज्यों व समूहों की शहर आधारित विशेषज्ञता के उभार की दिशा में प्रगति का संकेत था।

इस सभ्यता के पतन तथा सामाजिक संगठन के एक नये रूप के उभार के बारे में भी ऐसा ही कहा जा सकता है, जो आने वाले दिनों में भारतीय सामाजिक संरचना और जाति व्यवस्था की केंद्रीय धुरी बनने वाला था। उपमहाद्वीप के समृद्ध संसाधन तथा जलवायविक स्थितियां समूहों के प्रवसन एवं उनके बस जाने को लेकर हमेशा अनुकूल रहे हैं, लेकिन इस स्थिति की तुलना विदेशी सामाजिक संगठनों की शुरुआत के साथ नहीं की जा सकती है। इस रूपांतरण को लेकर बाहरी क्षेत्रों के पूर्ण प्रभाव की किसी आयातित व्याख्या की तरफ देखने के बनिस्बत स्वदेशी विकास की ओर देखना ज्यादा उपयुक्त मॉडल है। ■

इलस्ट्रेशन : जे.पी. त्रिपाठी

पुरातात्विक निवासी

प्रारंभिक प्राति नूतन युग तक भारत पहले ही मानव जनसंख्या से आबाद देश था, और भारतीय हाथ की कुल्हाड़ी और मांस काटने के चाकू समेत एकेउलियन प्रौद्योगिकी से पूरी तरह परिचित थे। इस प्रकार, भारत प्रारंभिक प्राति नूतन युग तक पुरापाषाण लोगों से काफी आबाद हो चुका था

■ प्रोफेसर राजन गौड़
मानव विज्ञान संकाय
पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

भारतीय आबादी विभिन्न प्रकार के जनजातीय, धार्मिक एवं जातीय समूहों से निर्मित मुख्य रूप से कई अंतर्विवाही समूहों का एक मिश्रण है। हमारा देश प्रवजनों एवं आंतरिक जनसंख्या आवाजाही की कई धाराओं का गवाह रहा है, जिसने अंततोगत्वा मौजूदा सजातीय संरचना को बढ़ाया। लेकिन भारत के प्रारंभिक निवासी कौन थे, यह निश्चित नहीं है। अगर हम अतीत में झांके तो ऐसे साक्ष्य मिलते हैं कि हमारे देश में मध्य प्रातिनूतन युग तक मानवों का वास था। ये साक्ष्य पत्थर एवं अन्य पुरावशेषों के रूप में हैं, जो निश्चित रूप से मानवीय कारीगरी है। देश भर में ऐसे अनगिनत स्थल हैं, जहां पत्थर की कलाकृतियां हैं, जो स्पष्ट रूप से इस तथ्य की ओर इंगित करती हैं कि भारतीय उपमहाद्वीप में पुरापाषाणयुग के दौरान अच्छी आबादी थी। बहरहाल, जीवाश्म के रूप में हमारे विलुप्त पूर्वजों के अवशेष के रूप में भारत में मानवों के अस्तित्व के पुख्ता साक्ष्य बेहद कम है। हालांकि हमारे पास पत्थरों के पुरावशेष के रूप में मानवों की जनसंख्याओं का पूर्वऐतिहासिक अस्तित्व है, लेकिन इनके साथ समस्या यह है कि पत्थरों के पुरावशेष की एक बड़ी संख्या की सतह पर खोज की गई है और इनसे समय का सटीक अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

इन सभी पुरावशेषों के युगों का हमारा आकलन टाइपोलॉजी या विश्व के अन्य हिस्सों जहां मुख्य रूप से रेडियोमीट्रिक तरीकों से युगों की बेहतर जानकारी है, के समानांतर ढूंढने पर आधारित है। इन पुरावशेषों की उम्र के हमारे सभी आकलन, टाइपोलोजी या दुनिया के अन्य हिस्सों जहां समय के बारे में, खासकर रेडियोमीट्रिक पद्धतियों के जरिये, अच्छी जानकारी है, के समानांतर के समय का अनुमान लगाने पर आधारित है।

इन साधनों में से सबसे पुराना एकेउलियन पुरावशेष हैं, जो अफ्रीका में लगभग 1.6 मिलियन वर्ष पहले उभरे। पैलेइओमैगनेटिकली एवं रेडियोमीट्रिकली तरीके से समय की जानकारी वाले कुछ पाषाण पुरावशेषों में एक दक्षिण भारत में चेन्नई के निकट अत्तिरमपक्कम नामक स्थल से प्राप्त हुआ। इस स्थल से प्राप्त हाथ की कुल्हाड़ी का समय शांति पप्पू एवं सहयोगियों द्वारा लगभग 1.07 मिलियन वर्ष आंका गया है जबकि सामूहिक औसत लगभग 1.5 मिलियन वर्ष का है। 'साइंस' पत्रिका में प्रकाशित इन निष्कर्षों से संकेत मिलता है कि एकेउलियन लोग दक्षिण भारत में 1.07 मिलियन वर्ष पहले मौजूद थे। इन निष्कर्षों से यह भी संकेत मिलता है कि प्रारंभिक प्राति नूतन युग तक भारत पहले ही मानव जनसंख्या से आबाद देश था, जो हाथ की कुल्हाड़ी और मांस काटने के चाकू समेत एकेउलियन प्रौद्योगिकी से पूरी तरह परिचित थे। इस प्रकार, भारत प्रारंभिक प्राति नूतन युग तक पुरापाषाण लोगों से काफी आबाद हो चुका था।

हालांकि, अब हमारे पास प्रारंभिक प्राति नूतन युग के दौरान भारत में मानवों की बसावट के साक्ष्य के रूप में पत्थर की कलाकृतियां हैं, मानव फॉसिल सुस्पष्ट रूप से केवल दो ही है। भारत के एक मानव जीवाश्म पूर्वज की सबसे प्राचीन खोज मध्य प्रदेश के होशंगाबाद जिले के हाथनोरा गांव के निकट नर्मदा बेसिन से प्राप्त एक आंशिक मानव खोपड़ी की है। यह खोज 'नर्मदा मानव' के नाम से विख्यात है, जिसकी तलाश 1982 में मध्य नर्मदा घाटी में मध्य प्राति नूतन धरोहर से भारतीय भूविज्ञान सर्वे के भू वैज्ञानिक डा. अरुण सोनाकिया द्वारा की गई थी और इसे नए टैक्सॉन होमो इरेक्टस नर्मदेनसिस को निर्दिष्ट कर दिया गया था। इसके बाद के अध्ययनों से संकेत मिला कि यह एक पुराकालीन होमो सैपिएंस हो सकता है। सोनाकिया और बिश्वास इस खोज को वर्तमान से लगभग 0.73 मिलियन वर्ष पूर्व मध्य प्राति नूतन युग का मानते हैं।

हालांकि ऐसी भी खबरें हैं कि एक पिगमी पुरुष की हंसुली और पसली के जीवाश्म मिले हैं, लेकिन केवल सुस्पष्ट मानव जीवाश्म भारत से हाथनोरा मानव खोपड़ी का ही रहा है। यह एक विचित्र-सी बात लगती है कि जहां अफ्रीका में पत्थर के उपकरण मानव जीवाश्म के अस्थिपिंजर अवशेषों के साथ पाए गए, पूरे भारत में हम पूर्वऐतिहासिक पत्थर के पुरातत्व पाते हैं, लेकिन 'नर्मदा मानव' के अतिरिक्त हमें जीवाश्म का कोई साक्ष्य प्राप्त नहीं होता। यह संभव है कि भविष्य के अनुसंधानकर्ता अरैर खोजकर्ता अधिक जीवाश्म साक्ष्यों का पता लगा सकें। इस प्रकार, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उपलब्ध पुरातात्विक साक्ष्यों से संकेत मिलता है कि भारत में प्रारंभिक प्राति नूतन युग में एकेउलियन लोगों का वास था। बहरहाल, मानव जीवाश्म के रूप में भारतीय आधिपत्य का मजबूत प्रमाण वर्तमान में केवल मध्य प्राति नूतन युग से ही प्राप्त होता है। ■

यह खानाबदोशी किसी बस्ती की खोज है या ...

खानाबदोश समुदायों का इतिहास में बेहद लंबे समय से एक सामाजिक-सांस्कृतिक वर्ग के रूप में अस्तित्व रहा है, जिनकी एक स्वतंत्र जीवन शैली रही है, और जो भारत के ग्रामीण एवं शहरी दोनों ही जीवनों में पूरी तरह समेकित रहे हैं

■ प्रो. आर. शिव प्रसाद
मानव विज्ञान संकाय
हैदराबाद विवि., हैदराबाद

खानाबदोश एवं गैर अधिसूचित समुदाय भारत की आबादी में एक उल्लेखनीय हिस्सा हैं। और इसके ताने-बाने का एक महत्त्वपूर्ण पहलू। ये समुदाय भारत के लगभग सभी राज्यों में फैले हुए हैं। राष्ट्रीय गैर अधिसूचित, खानाबदोश एवं गैर-खानाबदोश जनजाति आयोग (2008) जिसका लोकप्रिय नाम बालाकृष्ण रेनके आयोग है, का आकलन है कि हम अगर संकीर्ण नजरिये से भी देखें तो खानाबदोश एवं गैर अधिसूचित समुदाय देश की आबादी के लगभग 10 फीसद हैं, क्योंकि 100 से भी अधिक समुदायों की आबादी के आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। रेनके आयोग द्वारा यह भी अवलोकन किया गया गया कि भारत में लगभग 500 खानाबदोश समुदाय तथा लगभग 150 गैर अधिसूचित समुदाय हैं। इन समुदायों में चरवाहे, पुरोहताई से जुड़े लोग, जड़ी-बूटी विक्रेता, कारीगर, लुहार, संगीतकार, अभिनेता, मनोरंजन करने वाले, भांट, भिखारी, भविष्यवक्ता आदि शामिल नहीं हैं। खानाबदोश एवं गैर अधिसूचित समुदाय सांस्कृतिक एवं सामाजिक रूप से एक विशिष्ट समूह का निर्माण करते हैं। जहां तक उनकी आजीविका के साधनों का सवाल है तो उनमें काफी हद तक विभिन्नताएं हैं। यह याद रखना महत्त्वपूर्ण है कि खानाबदोश समुदायों का इतिहास में बेहद लंबे समय से एक सामाजिक-सांस्कृतिक वर्ग के रूप में अस्तित्व रहा है, जिनकी एक स्वतंत्र जीवन शैली रही है और जो भारत के ग्रामीण एवं शहरी दोनों ही जीवनों में पूरी तरह समेकित रहे हैं।

एक वर्ग के रूप में गैर अधिसूचित समुदाय 1857 की आजादी की लड़ाई, जिसमें कई खानाबदोश समुदायों ने औपनिवेशिक शासकों को देश के बाहर फेंक देने में हिस्सा लिया था, के बाद ब्रितानी शासकों का एक सृजन हैं। ब्रितानियों ने एक बेहद विचित्र थ्योरी फैलाई कि कुछ समुदाय जन्म से ही अपराधी हैं और यही उनकी जाति या आपराधिक पेशा है। ब्रितानी शासकों ने एक अपराधी जनजातीय अधिनियम को लागू किया और इस अधिनियम के तहत कई सारे समुदायों को अधिसूचित किया और समय-समय पर इसका संशोधन किया। जिलाधीशों को अधिकार दिया गया कि वे अपने अधिकार क्षेत्र के तहत समुदायों को अपराधियों के रूप में अधिसूचित कर सकते हैं। 1952 के बाद इसे रद्द कर दिया गया और अयंगर समिति की अनुशंसाओं के बाद इन सभी समुदायों को गैर अधिसूचित कर दिया गया। यही वजह है कि उन्हें गैर अधिसूचित जनजातियों (डीएनटी) के रूप में वर्गीकृत किया जाता है।

वर्गीकृत करने की जरूरत

खानाबदोशों को चरवाहों एवं गैर चरवाहों (घुमंतू) खानाबदोशों में वर्गीकृत किया जा सकता है। चरवाहा समुदाय देश के अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में रहते हैं और चरवाही पर ही निर्भर करते हैं। वे भी काफी अलग-अलग प्रकार के होते हैं और उनके बीच अंतर जानवरों की विभिन्नता पर निर्भर करता है अर्थात वे किस प्रकार के पशुओं की चरवाही करते हैं यानी भैंसों, याक, ऊंट, बकरे, भेड़, बत्तख, सुअर आदि। घुमंतु भी अपनी पेशागत विशिष्टिता के आधार पर एक दूसरे से अलग होते हैं। वे न केवल हिंदू, मुसलमान, सिख, बौद्ध, ईसाई आदि धार्मिक समूहों से संबंधित होते हैं; बल्कि वे कई भाषाएं भी बोल सकते हैं। घुमंतु बेहद प्रतिभावान गायक, नर्तक, अभिनेता, मनोरंजन करने वाले, मदारी, जादूगर, कलाकार, लुहार, शिल्पकार आदि भी होते हैं।

खानाबदोश समूहों में रहते हैं और घनिष्ठ पारिवारिक एवं सामाजिक संबंधों का निर्वाह करते हैं। इन समुदायों में शादी की उम्र उल्लेखनीय रूप से कम होती है। वे मुख्य रूप से अशिक्षित होते हैं और देश में शैक्षणिक लिहाज से बेहद निचले पायदान पर हैं। उनका एक विशिष्ट सामाजिक संगठन होता है और उनका अपना सामुदायिक परिषद (जाट पंचायत) होता है, जो समुदाय में अमन बहाल रखता है और समुदाय के भीतर कानून एवं व्यवस्था एजेंसी के रूप में काम करता है। सामुदायिक परिषद द्वारा अंतःसामुदायिक विवादों का भी निपटान किया जाता है। गैर अधिसूचित समेत खानाबदोश समुदाय समायोजन, स्वीकार्यता, अंतःसामुदायिक भाईचारा एवं समेकन के प्रतीक हैं। वे देशज ज्ञान के भंडार हैं तथा उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों के शानदार प्रबंधक हैं। बरलैंड (2003) ने उन्हें 'तत्वों को जोड़ने वाला सेतु' कहा था जो बिल्कुल सही है। घुमंतु खानाबदोश और गैर अधिसूचित समुदाय ग्रामीण एवं शहरी दोनों ही क्षेत्रों में विचरण करते हैं। वे गांवों का अक्सर भ्रमण करते हैं और विभिन्न जातियों के साथ संबंध बना कर रखते हैं तथा अपनी सेवाओं के बदले में चीजों को प्राप्त करते हैं। चरवाहों के समुदाय का अतीत में कृषक अर्थव्यवस्था में एक अंतरंग हिस्सा था। उन्होंने ग्रामीण कृषकों से एक सहजीवी संबंध बना कर रखा था।

खास अर्थव्यवस्था जैसा वर्ताव करें

चरागाही अर्थव्यवस्था के साथ एक विशिष्ट अर्थव्यवस्था के रूप में बर्ताव किया जाना चाहिए। वे एक अच्छे प्रजनक और पशुचिकित्सक भी रहे हैं। ब्रितानियों ने खानाबदोश पशु चराने वालों को कभी भी आर्थिक पेशे के रूप में नहीं समझा और घुमंतुओं को भिखारी के रूप में समझा। वे खानाबदोशों पर संदेह करते थे और उन्हें सभ्य बनाने की अपनी नीति के जरिये उन्हें एक ही स्थान पर सीमित रखने की कोशिश की। स्वतंत्र भारत के दौरान भी यह नीति बदस्तूर रही। ब्रितानियों ने आम लोगों के मन में इन समुदायों के चरित्र के बारे में संदेह पैदा करने में सफलता पाई है। ताकत या कानून और परिस्थितियों के कारण उन्हें कभी भी उनके पारंपरिक व्यवसायों को जारी रखने की अनुमति नहीं दी गई और चोरी तथा जरायम जैसी गैर कानूनी गतिविधियों में धकेल दिया गया।

कई नगरवासी तथा कुछ ग्रामीण भी खानाबदोशों तथा गैर अधिसूचित समुदायों को संदेह की नजर से देखते हैं। कुछ अधिनियमों का भी इन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। अयंगर समिति की अनुशंसाओं के बाद भारत सरकार ने 1952 में दकियानूसी आपराधिक जनजाति अधिनियम को निरस्त कर दिया। बहरहाल, इनसे गैर अधिसूचित समुदायों की स्थिति में कोई बदलाव नहीं आया है। आपराधिक जनजाति अधिनियम की जगह अभ्यस्त अपराधी अधिनियम, भिक्षावृत्ति रोकथाम अधिनियम आदि ने ले ली जिसने इन समुदायों के सदस्यों के जीवन को और भी कष्टप्रद बना दिया। आज स्वतंत्र भारत में भी ये समुदाय सामाजिक एवं आर्थिक रूप से सबसे अधिक भेदभाव के शिकार हैं। योजनाकारों एवं नीति-निर्माताओं के लिए ये समुदाय अस्तित्वहीन हो जाते हैं। सामान्य योजनाएं इनकी जरूरतों की पूर्ति नहीं करती और किसी भी विकास योजना में विशेष रूप से इनसे संबंधित कुछ भी नहीं होता।

नई हवा का असर भी है

आधुनिकीकरण, आर्थिक उदारवाद एवं भूमंडलीकरण की बयार ने इन समुदायों पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है और इनमें से कई को अपने स्थानों से बेघर होना पड़ा है। अभी जो सूरते हाल है उसमें इनमें से कुछ को भीख मांगने, दिहाड़ी काम करने, कूड़ा बीनने आदि को मजबूर होना पड़ा है। बड़ी विकास योजनाओं ने उन्हें बेहद प्रतिकूल तरीके से प्रभावित किया है, क्योंकि उन्हें अपने पारंपरिक संसाधनों से हाथ धोना पड़ा है। आज उनके पास न कोई संपत्ति है और न ही कोई पता। उनके सामने मकान और और रिहाइश की गंभीर समस्या है। वे बेहद अस्वच्छ स्थानों या क्षेत्रों में रहते हैं और उनके पास पीने के पानी, स्वच्छता आदि जैसी कोई भी बुनियादी सुविधा नहीं है। आजीविका संसाधनों के नुकसान और एक ही जगह सीमित रहने की नीति के कारण इन समुदायों की जीवन शैली में एक बदलाव आया है। वे ज्यादा से ज्यादा एक ही स्थान पर सीमित रहने लगे हैं और उनकी कुछ आजीविकाएं लगभग पूरी तरह अदृश्य हो गई हैं।

उन पर अब भी जरायमपेशा होने का कलंक लगा हुआ है। पुलिस प्रशिक्षण की किताबों में अब भी उनसे जुड़े मुद्दों के समाधान का अभाव है और वे कानून व्यवस्था तंत्र की मानसिकता बदलने को कोई प्रयास नहीं करते। समस्या की जड़ गरीबी, आजीविका के अवसरों और संसाधनों की कमी से संबंधित है, जिनसे इनमें से कई समुदाय जूझ रहे हैं। इस बात की महती आवश्यकता है कि सरकार और सिविल सोसाइटी से जुड़े संगठन इन मुद्दों का आगे बढ़ कर समाधान करें। ■